संपादकीय

शिक्षा भावी जीवन की तैयारी होती है। इसलिए शिक्षा की परिकल्पना में वर्तमान के साथ-साथ भविष्य की कल्पना भी हमेशा जुड़ी रहती है। इस भविष्योन्मुखता के बगैर शिक्षा का कारोबार किया जाना मुश्किल है। शिक्षा से जुड़े लोग शिक्षा के जरिए समाज के भविष्य का सपना देखने वाले लोग होते हैं। एक ऐसा सपना जिसे वे साकार करना चाहते हैं। अपने समाज, लोगों के जीवन में घटित होते देखना चाहते हैं। इस मायने में शिक्षा भविष्य के प्रति आशावान लोगों का कारोबार है। शिक्षा का कोई भी उपक्रम बगैर भविष्य की कल्पना के पूरा होना मुश्किल है। इसलिए शिक्षा को लेकर चलने वाली बहसें, खींचतान सब उस भावी सपने को लेकर भी होती हैं जिसे लोग या लोगों के समूह अपने-अपने लिए देखना चाहते हैं। यह खींचतान और तीखी हो जाती है जब हम अपने सपने को दूसरों द्वारा देखा जाना भी तय करने लगते हैं और यहीं नहीं रुकते बल्कि उनके सपने को गढ़ने लगते हैं। यही वह वजह है जो शिक्षा को राजनैतिक आकांक्षाओं का केंद्र बनाती है और किताबों के पन्नों से लेकर शैक्षिक संस्थानों व सड़कों तक राजनैतिक तूफान उठ खड़े होते हैं। यह बात जहां एक तरफ शिक्षा की अहमियत को दिखाती है वहीं इस वजह से शिक्षा को नुकसान होने की संभावना भी उतनी ही बढ़ जाती है।

एक बड़ा नुकसान हम शिक्षा के वैचारिक आग्रह के एक साधन के तौर पर इस्तेमाल हो जाने के खतरे में देख सकते हैं। यह खतरा हमारे जैसे विविधतापूर्ण समाज में और बढ़ जाता है क्योंकि अलग-अलग समाजों, समुदायों, व्यक्तियों के वैचारिक आग्रह एक-दूसरे से भिन्न हो सकते हैं। इन आग्रहों पर टिकी उनकी भविष्य की कल्पना व सपने भी अलग-अलग हो सकते हैं और यह उनके बीच आपसी टकराहट की वजह बन सकती है। ऐसे में हमारे पास एक रास्ता यह बचता है कि हम सब अपने लिए एक साझा भविष्य की कल्पना करें, एक साझा सपना गढ़ें। किन्तु एक सवाल यह है कि उस साझेपन का वैचारिक आधार क्या हो? क्योंकि शिक्षा वैचारिक आग्रहों से मुक्त नहीं हो सकती। हम जैसे ही यह सवाल उठाते हैं हमारे सामने तुरंत परिस्थिति का सवाल उठ खड़ा होता है और वह यह कि शिक्षा किन परिस्थितियों में? व किन परिस्थितियों की निर्मिति के लिए?

परिस्थितियों के जो संदर्भ हमारे सामने हैं उनमें से एक विकल्प यह हो सकता है कि बहुसंख्यकों के वैचारिक आग्रह को स्वीकार लिया जाए। किन्तु इससे अल्पसंख्यकों के साथ हम न्याय नहीं कर पाते और हमारे देश में बहुसंख्यक आबादी के भीतर भी भारी विविधता मौजूद है। ऐसे में खुद उनके लिए किसी एक वैचारिक आग्रह को आधार बनाना मुश्किल खड़ी करने वाला कदम होगा। दूसरा विकल्प यह है कि सभी के वैचारिक आग्रहों को जगह दी जाए। किन्तु इसमें समाज के ताने-बाने के टुकड़ों में बंट जाने का खतरा है। क्योंकि हमारे देश में इतनी विविधता है कि उसमें एक-दूसरे से लगभग सर्वथा भिन्न सांस्कृतिक मान्यताओं वाले समाज व समुदाय मौजूद हैं। इसे हम पहनावे के एक उदाहरण से समझ सकते हैं। हो सकता है एक समुदाय में साड़ी पहनने को बेहतर माना जाता हो जबकि दूसरे समुदाय में सलवार कमीज पहनने को। और यह भी संभव है कि दोनों अपनी-अपनी संस्कृति में दूसरे की इन पोषाकों को कम बेहतर मानते हों। यह तो सिर्फ एक उदाहरण है, ऐसी सैकड़ों चीजें होंगी जिन पर टकराहटें सामने आएं। हमारे देश के संदर्भ में एक और विकल्प हमारे पास है जिसे हमने स्वतंत्रता के बाद अपने लिए चुना है और वह है एक स्वायत्त व लोकतांत्रिक समाज के रूप में अपने को विकसित करने का वैचारिक आग्रह। चूंकि स्वतंत्रता के संघर्ष में लिंग, जाति, उम्र, वर्ग आदि से परे समाज के सभी तरह के लोगों का प्रतिनिधित्व रहा है और अपने देश को स्वायत्त व लोकतांत्रिक देश बनाने का सपना चुनने की एक बड़ी वजह यह रही है कि उसमें सबकी भागीदारी रहे।

यह बात हमें एक साझा भविष्य व सपना बुनने का सूत्र देती है। अपने साझेपन को इस तरह परिभाषित करते ही हमारे सामने ऐसी शिक्षा की जरूरत आन खड़ी होती है जो इसे हासिल करने में समर्थ नागरिक तैयार करती हो।

जरा गौर करें तो यहां हमने लोकतांत्रिक व्यवस्था को अधिनायकवाद, राजतंत्र या किसी धर्म, नस्ल आदि के आधार पर स्थापित व्यवस्थाओं के ऊपर एक वरीयता दे दी है। मगर इस वरीयता देने का कारण क्या है? इस सवाल का सामना करने से हमें बचना नहीं चाहिए। इस वरीयता का कारण है लोकतांत्रिक व्यवस्था का मनुष्यों के बीच बराबरी के सिद्धांत पर आधारित होना। इसकी नजर में सभी मनुष्य बराबर हैं जो कि अन्य व्यवस्थाओं में मुमकिन नहीं है। क्या सभी मनुष्यों को बराबर माना जाना उचित हैं? यह सवाल उठाया तो जा सकता है लेकिन इसका कुछ किया नहीं जा सकता। क्योंकि यह वह आधारभूत मान्यता है जिससे आगे बाकी तर्क निकलते हैं। एक बार इस सिद्धांत को स्वीकार कर लेने के बाद इसी से लोकतंत्र को स्वीकारने की दूसरी वजहें बनती हैं। वे वजहें हैं राजनैतिक निर्णयों में जनसहभागिता की स्थापना जो अन्य व्यवस्थाओं में मुमकिन नहीं है। लिए जाने वाले निर्णयों के लिए सार्वजनिक रूप से सिद्ध किए जा सकने वाले तर्क प्रस्तुत करना और किसी भी तर्क या व्यवस्था को उस पर सवाल खड़े किए जाने से परे नहीं मानना।

अब उक्त संदर्भ में अगर हम शिक्षा की परिकल्पना करें तो शिक्षा में ऐसे तत्वों का होना जरूरी है जो व्यक्ति को आर्थिक तौर पर समर्थ बनाने में सक्षम हों तथा मानसिक स्तर पर मतारोपण आदि से इतर अपने फैसले से विचारों को चुनने, उन पर सवाल उठाकर उनमें उचित-अनुचित का भेद कर पाने में समर्थ बनाते हों। इस बात में एक स्वायत्त व स्वतंत्र व्यक्तित्व के विकास का आग्रह मौजूद है यह बात हमें पता होनी चाहिए। अब यह दोनों तर्क हमें शिक्षा को किसी मतारोपण से इतर स्वायत्त तौर पर चलने वाली व्यवस्था के तौर पर स्थापित करने की वजहें दे देते हैं।

शिक्षा के संदर्भ में एक सवाल अभी भी बचा रह जाता है कि शिक्षा क्यों करना चाहते हैं? इसकी वजह हमें मनुष्य के तौर पर अपने अस्तित्व को बनाए रखने की जद्दोजहद में मिलती है। बतौर मनुष्य हम अपने अस्तित्व को बचाए रखने के लिए अपनी भावी पीढ़ी को इतना समर्थ बनाना चाहते हैं कि वह अपना अस्तित्व बनाए रख सके। मनुष्य के विकास काल में मानवीय ज्ञान जिस जटिल अवस्था में पहुंच चुका है उसमें अस्तित्व बनाए रखने के लिए जरूरी है कि इस ज्ञान को अर्जित किया जाए। इस ज्ञान को हासिल करने का रास्ता है कि उस ज्ञान सृजन की प्रक्रिया में भागीदारी की जाए। लेकिन ज्ञान सृजन का चस्का ऐसा होता है कि वह सिर्फ उसे सीखने तक आकर रुक नहीं जाता वरन उसमें नए सृजन के लिए उकसाता है और यही वह कुंडली है जो हर शह आगे बढ़ती जाती है और मनुष्य अपने ही ज्ञान की इस कुंडली में थोड़ा और इजाफा करता जाता है और फंसता जाता है।

उक्त संदर्भ शिक्षा के एक ऐसे स्वायत्त त्रिभुज की निर्मिति करता है जिसके एक कोने पर आर्थिक रूप से सक्षम होने की तैयारी है, दूसरे कोने पर अपने उचित-अनुचित के फैसले के आधार पर विचार चयन की सामर्थ्य विकसित करने की तैयारी है तो तीसरे कोने पर मानवीय ज्ञान की विरासत में साझेदारी व नया सृजन करने की तैयारी है। और इस शिक्षा रूपी त्रिभुज का औचित्य हमारे इस लोकतांत्रिक समाज के बीचों-बीच स्थित होने में है।

यह वक्त शिक्षा विमर्श के संदर्भ में एक सूचना साझा करने का भी है। वह यह कि अभी तक संपादक रहे विश्वंभर ने विमर्श को एक मुकाम तक पहुंचाया है और पाठकों, लेखकों व अनुवादकों के बीच एक भरोसा बनाया है; वे विमर्श की जिम्मेमदारी दूसरे हाथों में सौंपकर शिक्षा के क्षेत्र में अन्य तरह के कामों से जुड़ने जा रहे हैं। उनकी सफलता की कामना करते हुए यही कहा जा सकता है कि आगे उस भरोसे को कायम रखने की कोशिश रहेगी साथ ही सभी का सहयोग यथावत मिलता रहे इसकी उम्मीद भी। ◆